दर्शकः

प्रशान्त घनश्याम - जमुना देसाई

रत्न

६

Mānavpath

based on

Pushti Maryādā Pravāh Bhed

of

Pujya Shrï Vallabhāchārya

Written & published by

Prashant Desai

Dipt.me

e-publication

June 21, 2025

मूल्यः सहयोग-सेवा

© Prashant Desai

All Rights Reserved.

Without the prior written permission of the publisher,

This book may not be reproduced or sold in any form.

Email: usha.dipt@gmail.com / Visit at: www.dipt.me

हरिॐ नमो भगवते श्रीकृष्णाय वासुदेवाय

श्रीवल्लभाचार्यविरचितम्

॥ पुष्टि मर्यादा प्रवाह भेद॥

आधारित

श्रीवल्लभ साहित्यमाला : रत्न - ६

मानवपथ

श्लोक पदच्छेद अन्वय
भाषांतर तात्पर्य

दर्शक : प्रशांत घनश्याम-जमुना देसाई

रत्न-पांचमें देखा था वैसे, आचार्यश्री तीन प्रकारके मार्ग पर चलते, पांच प्रकारके मनुष्योंके भेद.. मानवीय तफावत कहतें है। उसमें प्रथम प्राकृतलोग, (१) आसुरी प्रवाहमार्गी (२) दैवी प्रवाहमार्गी, पश्चात् मर्यादीलोग (३) ज्ञानमार्गी साधक (४) भक्तिमार्गी साधक। अंतमें (५) सिद्ध मनुष्य कि जिनको प्रभुने स्वीकार करके पुष्ट किये! चौथे प्रकारके मनुष्यसे से पुष्टिमार्गीका आरंभ होता है।

इस ग्रंथमें आचार्यश्री उन पांच प्रकारके मनुष्योंका ही विशेष वर्णन करेंगे। उसमें हम कहाँ है, वो स्वयं ही तय करना है। मुख्य तीन भेद है।

प्रवाहमार्गीः जब प्रथम मनुष्यदेह मिलता होगा तब, मनुष्यत्वका नया ही अनुभव होगा! मस्तक भी कोरा कागज होगा! उसमें कौनसे विचार, वृत्ति, संस्कार, कला, साथ-संगाथ... ग्रहण करना है वो मानव स्वयं ही तय करेगा। उसमें देश-काल, संबंधोकी असर, शिक्षण-अभ्यास वगैरे परिस्थितियाँ अवश्य भाग लेगी पर, अंतमें उसके व्यक्तित्वका आधार.. जो संपादन किया है उसका श्रेय, मनुष्य स्वयं ही है! गीताजी कहती है ऐसे, तू ही तेरा मित्र और तू ही तेरा शत्रु! कारण, तुझे स्वतंत्र बुद्धि दी हुई है, तू स्वयं ही अभ्यास कर सकता है! तू किसीके तालसे नाच, किसीके प्रभावमें रहे, किसीके रास्तेपे चला जा या तेरा रास्ता स्वयं बना ले! कोई बंधन नहीं, प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र है! तेरा मानना-न मानना, बनना-न बनना, गिनना-न गिनना... ऐसी सभी बाबतोंकी स्वीकृति तुझ पर ही निर्भर है। यह मनुष्यत्वका प्रथम सिद्धांत है कि मनुष्य सर्वतः पूर्ण स्वतंत्र है! आगे किस मार्गसे जाना है, उसका निर्णायक मनुष्य स्वयं ही है!

इसलिये जिन्होंने अभी कोई मार्ग तय नहीं किया, वे प्रवाहमार्गी है। जैसे कि वे आस्तिक है या नास्तिक, संसारप्रिय है या जिज्ञासाप्रिय, बाह्यप्रवृत्त है या अंतःप्रवृत्त, उन सभी मनोवृत्तियाँ समझ लें तो आगेका मार्ग पसंद कर सकें!

दूसरा, सृष्टिगत दो संपदाएँ.. दैवी और आसुरी होती ही है, उनमेंसे किसी एक संपदाका स्वीकार करके चलना है, वो मनुष्यको प्रथम निश्चित करना है। अब इसमें परंपराएँ, मत-मतांतर, संप्रदाय या धर्म.. इत्यादि महत्वकी भूमिकामें है। उसमें यदि आसुरी संपदामें फँसें तो समझो विकास गया! पर स्वयं अभ्यास करके या सद्भाग्यसे दैवी मार्ग हाथ लग गया तो, आगे विकास निश्चित है। इन दोनों संपदाओंका गीताजीके सोलहवें अध्यायमें विस्तृत वर्णन मिलता है।

मर्यादामार्गीः आजके युवानोंने एक शब्द सुना न होगा, मैंने बहोत सुना है कि यह 'मरजादी' है! अर्थात् वो किसीको छुएगा नहीं, हमें भी उसे नहीं छुना है। उसका सब अलग! सेवा अलग, अन्नपाणी अलग! फिर पता चला कि मर्यादी शब्दका अपभ्रंश मरजादी शब्द हुआ है! मर्यादा पालनेवाले लोग अर्थात् साधना करनेवाले लोग, जो मर्यादी हुए है! मर्यादा रखनी ही होगी, उसके विना विकास नहीं.. साधना नहीं। अतिभावसे छूआछूतके दूषण घूस गयें ये वात अलग है, पर यह सच्चा विकास मार्ग है, साधनाकाल है। जो मर्यादामार्गी है वें, दैवीवृत्तिके तो है ही, उपरांत उनकी साधना दो मार्गोंसे भिन्न होती है। एक, ज्ञानमार्गसे.. संन्यास प्रवृत्ति और दूजे, भक्तिमार्गसे.. मानसीसेवा प्रवृत्ति। दोनोंमें कर्म अनिवार्य है, दोनोंमें बंधन आवश्यक है, मर्यादा रखनी है.. संयम रखना है। समय-संजोग आधारित उसके पालन भिन्न होंगे पर, मूल हेतु नहीं बदलेगा। दोनोंका गंतव्य एक ही है.. स्वस्वरूपानुसंधानम्! अहं ब्रह्मास्मिकी अनुभूति!

अब, ज्ञानमार्गमें साधकको अपना स्वयं ध्यान रखना है, उसको किसीके पाससे कोई अपेक्षा नहीं। जबकी भक्तिमार्गमें साधक प्रभुके शरण होता है, उसको आधार.. सहरा.. मदद मिलती है; उसको ही आचार्यश्री 'पुष्टि' कहतें है! ये है चौथे प्रकारके मानवी! भक्तके विकासका दायित्व भगवान स्वयं लेतें है। इस स्थानमें पुष्टि अर्थात् अनुमोदन या वृद्धि! ऐसे भ्रममें न रहें कि रोज माला की तो साधना पूरी! भक्तिकी साधना मानों प्रेमका पर्याय होना और परिशुद्धिका पूर्ण प्रयत्न करना। भक्त प्रयत्न करें तो भगवान अनुमोदन दें या वृद्धिकी सवलत कर दें, अन्यथा मात्र सेवासे या मालासे जीवनमें कोई आवश्यक सुधार नहीं होता।

पुष्टिमार्गीः जब व्यक्ति पूर्ण हो, उसमें ज्ञानमार्गसे ब्रह्मत्व पायें या भक्तिमार्गसे ब्रह्मत्व पायें, वो पुष्ट हुआ कहलाता है! यहाँ पुष्टि अर्थात् स्वीकृति! उसको ब्रह्मस्वरूपसे भगवानने स्वीकार लिया! अब मार्ग तो रहा नहीं! पहोंचनेके बाद मार्ग कैसा? आचार्यश्री यहाँ समझातें है कि एक अंतिम मार्ग शेष है! उस मार्गका नाम है, अद्वैतमार्ग! वो ही सच्चा पुष्टिमार्ग! भगवानमें खो जाना! द्वैतावस्था भी समाप्त! चूँकि यह स्थिति ईश्वरकृपासे ही शक्य है, यहाँ किसीका कुछ न चलें! ना जप ना तप! ना भक्ति ना ज्ञान! मात्र ईशकृपासे शक्य होता है। इसी समयमें भगवान उनके देहमें आ बसेंगे, पूर्णरूपसे.. परमात्मा स्वरूपसे! वो पुष्टव्यक्ति हमारे लिये हो जातें है, महापुरुष.. महात्मा.. अंशावतार!

कहा ही है कि महाजनो गताः येन स पन्थाः। महापुरुष जिस पथसे गयें वो ही हमारा मार्ग! वो ही धर्म और वो ही कर्म! पर सब सोच-समझके! अंधा अनुकरण न चलें। घेंटावृत्ति है या सावजवृत्ति है! उसका ध्यान रखना होगा!

मार्ग-मार्गी-मार्गान्त; ये तीनों महत्वके है पर सबसे अगत्यका है, मार्गदर्शक! मार्ग बतायें, मार्गी बनायें और मार्गान्त.. गंतव्य तक पहोंचा दें उसे कहतें है मार्गदर्शक! भारतीय संस्कृतिने उसे गुरुकी पदवी दी है। कलिकालमें तो कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्! श्रीकृष्णके उपदेश या ज्ञान ही जीवनके आधार है! आचार्यश्रीने इस ग्रंथमें गीताजीके अवतरण लेकर ही सब समझाया है।

हम चलतें जायें और कहीं न पहोंचें तो! घाणीकी भाँति रास्ता ही गोलाकार हो जाय तो! कहीं भी न पहोंचेंगे! और ऐसा भी हो जाय कि, एक राह समाप्त हुई तो वहाँसे दूसरा रास्ता आरंभ हो जाय! नीजधाम.. डेस्टीनेशन.. मंझील मिले ही नहीं! रास्तोंको मिलें रास्ते हमारे, भगवान जानें कहाँ पहोंचेंगे! और ये तो भवाटवी! भवका जंगल! बहार निकलना ही जटिल.. अशक्य जैसा है।

ऐसेमें सच्चा मार्गदर्शक मिले तो ईश्वरकृपा! मानवका पथ.. राह.. मार्ग सरल नहीं है, कलियुगमें तो बीलकुल नहीं। स्वयं ही कलन करके चलना पडें वो युग अर्थात् कलियुग! जो यथार्थ आकलन न हुआ तो गाडी विपरित दिशामें गई समझो! महापुरुष जो राह दिखायें, उस राह पर स्वयं ही चलना है, तभी पहोंचेंगे! दूसरा चलें और हम पहोंचे ऐसा होगा क्या? इसलिये कोई कुछ भी कहें, वो मान लेना भूल होगी। भरमायें नहीं, स्वयं ही अभ्यास करके सब समझना है।

जीवनको पथ समझें तो भी खुद ही चलना है और पहोंचना है। जीवनको रमत समझें तो भी खुद ही खेलना है, जितना है! और जीवनको परीक्षा समझें तो भी खुद ही पसार करनी है! उत्तिर्ण होना है! उन सबमें भगवान तो मात्र प्रेक्षक है! उसमें महापुरुष दर्शक या प्रशिक्षक है!

यह ग्रंथ भी अन्य कुछ ग्रंथोकी भाँति अपूर्ण है.. कुछ ही प्राप्त है। इतने अमुल्य तत्त्वज्ञानका क्यों रक्षण नहीं हुआ! पढनेवालेको सहज दुःख होगा पर स्थिति स्वीकारनी होगी। जो अगत्यके मार्ग है, मर्यादामार्ग और पुष्टिमार्ग, उसके ही श्लोक नहीं मिलते है। आचार्यश्रीने कितना सुंदर समझाया होगा! उसकी मात्र कल्पना करनी है, हरिइच्छा! जितना मिला उतना सद्भाग्य हमारा! तो इस ग्रंथको विस्तारसे समझेंगे, तात्पर्य ग्रहण करेंगे। हरे कृष्ण!

१ पुष्टिप्रवाहमर्यादा विशेषेण पृथक्पृथक्।
जीवदेहक्रियाभेदैः प्रवाहेण फलेन च॥

पुष्टि	प्रवाह	मर्यादा	विशेषेण	पृथक्	पृथक्
पुष्टिमार्ग	प्रवाहमार्ग	मर्यादामार्ग	विशेष करके	अलग	अलग

जीव-देह-क्रिया-भेदैः	प्रवाहेण	फलेन	च
जीव (उसके) देह और कर्मके भेदपूर्वक	स्वभावसे	फलसे	और

प्रवाह.. प्रकृतिः, मर्यादा.. संस्कृतिः, पुष्टि.. स्वीकृतिः (मार्गाः) प्रवाहेण.. स्वभावेन च फलेन.. प्रारब्धेन, (यत्) जीव-देह-क्रिया भेदैः, पृथक् पृथक् विशेषेण (प्रवक्ष्यामि)॥

प्रवाह.. प्रकृति, मर्यादा.. संस्कृति, पुष्टि.. स्वीकृति (सर्व मार्ग), प्रवाहसे.. स्वभावपूर्वक और फलसे.. प्रारब्धपूर्वक, (जो) जीव-देह-क्रियाके भेद.. प्रकार, पृथक् करके.. विश्लेषण करके विशेषरूपसे (कहूँगा)।

तात्पर्य : भारतीय संस्कृतिका हजारों वर्षोंका इतिहास है, होगा ही! कारण वो सनातन है। सनातन अर्थात् शाश्वत.. आरंभसे अंत तक! उसमें साधु-संतोंका पार नहीं, लाखों ऋषि-मुनि.. योगी-ज्ञानी, भक्तों-आचार्यों, यती-संन्यासी हो गयें। इस संस्कृतिमें कितने ही अवतार.. भगवानकी विभूतियाँ है! हरेकका स्थल-काल आधारित महत्वपूर्ण योगदान है। संस्कृत एक समयकी वैश्विक भाषा थी, आज कलियुगमें लुप्तप्राय हूई और इससे संस्कृति विक्षिप्त है.. भींसमें है।

ऐसे कलिकालमें श्रीवल्लभाचार्यने मानवीयपथका सुंदर निरूपण किया है। ऐसा नहीं कि मानवताका विश्लेषण किसीने किया नहीं.. मानवता किसीने समझाई नहीं; बहोत विद्वान हो गयें जिन्होंने मनुष्यके गुण-धर्म आलेखें है, पर कालक्रमसे नष्ट हूए! सो आज मानवधर्मका सच्चा स्वरूप मिलता नहीं है। ऐसेमें आचार्यश्रीने मात्र तीन विभागमें, मनुष्यत्वका संपूर्ण चित्रांकन कर दिया! विभाग तो सृष्टिगत है, उन्होंने मार्गरूपसे निरूपण किया! उस पथ पर चलते बनों या अपना मनुष्यत्व गवाँ दो! संकलन हरेकका अपना अपना है!

इस सृष्टिमें कितने जीव! कितना विशाल विश्व! उसमें किसको किसका ध्यान है? हमें स्वयं ही ध्यान रखना है! तो आचार्यश्रीका मार्ग-दर्शन निश्चित कर लें!

२ वक्ष्यामि सर्वसंदेहा न भविष्यन्ति यच्छ्रुतेः।
भक्तिमार्गस्य कथनात् पुष्टिरस्तीति निश्चयः॥

वक्ष्यामि	सर्वसंदेहाः	न	भविष्यन्ति	यत्	श्रुतेः
कहता हूँ	सर्वसंदेह	नहीं	भावीमें रहेंगे	जो	सुने हुए

भक्तिमार्गस्य	कथनात्	पुष्टिः	अस्ति	इति	निश्चयः
भक्तिमार्गकी	कथनसे	वृद्धि	है	ऐसा	निश्चित मत है

यत् वक्ष्यामि (ततः) श्रुतेः सर्वसंदेहाः न भविष्यन्ति। (श्रीभगवतः)
कथनात् भक्तिमार्गस्य पुष्टिः.. वृद्धिः अस्ति, इति निश्चयः॥

जो कहता हूँ (तत्पश्चात्) सुने हुए सर्व संदेह.. संशय, भविष्यमें नहीं रहेंगे। (सर्वशंकाएँ दूर होगी। श्रीभगवानके) कथनसे.. वचनसे भक्तिमार्गकी पुष्टि.. वुद्धि है, ऐसा निश्चय है.. निश्चित मत है।

तात्पर्य : संशय तो रहेंगे या होंगे, नहीं होंगे तो लोग खडे करेंगे! कलियुगी लोग शंका नहीं छोडेंगे और संशय आपको नहीं छोडेंगे, आगे बढने नहीं देंगे! आजके युवानोमें वो दिखाई देता है। धर्मक्षेत्रमें या भक्तिक्षेत्रमें उनको कोई प्रगति दिखती नहीं है, संशय बढतें है! कारण, अन्य लोगोंमें कोई परिणाम दिखता नहीं है! एकसे एक रटी-रटाई वातोंसे आजके युवानोंको नहीं प्रेर सकतें। वे अनुभवमें मानतें है, उनको चाहिये निश्चित आधार.. पुरावा और परिणाम!

यहाँ आचार्यश्री कहतें है, इस ग्रंथको जाननेके बाद, भावीमें हरेकके संशय नष्ट होंगे.. नहीं रहेंगे। युवान हो या वृद्ध, नर हो या नारी.. जिनको भी भक्तिमार्गके बारेमें संशय होंगे वे दूर होंगे कारण, भगवानका ही आधार लिया है। स्पष्ट उपदेश है कि श्रीभगवद्गीतामें भगवानने दिये हुए कथन या वचनसे ही मनुष्यकी भक्तिमें बढावा होता है, पोषण मिलता है। पुष्टिमार्गका आधार मात्र गीताजी है ऐसा आचार्यश्रीका दृढ मत है। आपश्रीने गीताजीके अवतरणोंसे ही प्रत्येक वात समझाई है.. प्रत्येक मार्ग समझाया है।

कुछ श्लोकमें शाब्दिक भूलथी, पर उसे व्यवस्थित कर लिये है। जो क्रमांक कौंसमें दिखायें है वे (अध्याय.श्लोक) गीताजीके है। तो आगेके श्लोकसे आचार्यश्री मार्गदर्शनका आरंभ करतें है।

३ द्वौ भूतसर्गावित्युक्तेः प्रवाहोऽपि व्यवस्थितः।
वेदस्य विद्यमानत्वात् मर्यादापि व्यवस्थिता॥

द्वौ	भूतसर्गौ	इति	उक्तेः	प्रवाहः	अपि	व्यवस्थितः
दो प्रकारसे	जीवसृष्टि	ऐसा	कहा है	प्राकृतिकमार्ग	भी	समझाया है

वेदस्य	विद्यमानत्वात्	मर्यादा	अपि	व्यवस्थिता
वेदके	विद्यमान होनेसे	सांस्कृतिकमार्ग	भी	स्पष्ट है

'द्वौ भूतसर्गौ लोकेस्मिन्' (१६.६) इति उक्तेः, प्रवाहः.. प्राकृतिक (मार्गः) अपि व्यवस्थितः। वेदस्य.. वैदिक विचारस्य विद्यमानत्वात् मर्यादा.. सांस्कृतिक (धर्म-कर्म मार्गः) अपि व्यवस्थिता॥

'दो प्रकारकी जीवसृष्टि इस लोकमें है' (गीता १६.६) ऐसे कथनसे, प्रवाह.. प्राकृतिक मार्ग व्यवस्थित समझाया है। वेदके.. वैदिक विचारोंके आचार, विद्यमान संस्कारोंसे मर्यादा.. सांस्कृतिक (धर्म-कर्म मार्ग) भी व्यवस्थित निरूपित है।

तात्पर्य : आचार्यश्रीने अत्यंत संक्षिप्त अवतरण लिये है, कारण गीताजी तो नित्य विद्यमान है, जब चाहें देख सकतें है! अत्रे १६वें अध्यायमेंसे प्रथम अवतरण लिया है, वो अध्याय दैव-असुर-संपदा-विभाग है।

श्रीभगवान कहतें है, इस सृष्टिमें जीव दो रीतसे जीतें है, १. दैवी संपदासे और २. आसुरी संपदासे। दोनों संपदाओंका विगतवार वर्णन भी वहाँ है। अभय सत्त्व-संशुद्धि जैसे गुण दैवी संपत्ति है जबकि दंभ, अभिमान, मद जैसे गुण आसुरी संपत्ति है। कहतें है कि दैवीगुण मोक्ष और आसुरीगुण बंधन करेंगे। अध्यायके अंतमें कहतें है कि काम-क्रोध-लोभ, ये तीन नरकके द्वार ही है, उनसे दूर ही रहें, शास्त्रसंमत कर्म करें। इसको जाननेके बाद कौन आसुरी बनेगा?

यह वात प्राकृतिक.. प्रवाहमार्गकी थी, बादमें मर्यादामार्गको कहतें है कि वेदके कथन अनुसार.. सांस्कृतिक परंपराओंसे, मर्यादित जीवन व्यवहार करके, शक्तिवर्धन करके, उन शक्तिओंका उपयोग ब्रह्मप्राप्तिमें करें। ऐसा योगरूप मर्यादामार्ग भी गीताजीके छठे अध्यायमें मिलता है। इससे दोनों मार्गोंका व्यवस्थित ज्ञान और प्रथम चार प्रकारके मनुष्योंका अनुसंधान भी मिलता है। दैवी मानव व आसुरी मानव और ज्ञानमार्गी व भक्तिमार्गी।

४ कश्चिदेव हि भक्तो हि यो मद्भक्त इतीरणात्।
सर्वत्रोत्कर्षकथनात् पुष्टिरस्तीति निश्चयः॥

कश्चित्	एव	हि	भक्तः	हि	यः	मद्भक्तः	इति	ईरणात्
कोई	ही	क्योंकि	भक्त	सचमें	जो	मेरा भक्त	ऐसे	प्रेरित हो

सर्वत्र	उत्कर्ष	कथनात्	पुष्टिः	अस्ति	इति	निश्चयः
सर्वत्र	अभिवृद्धि	कथनसे	पोषण	है	ऐसा	निश्चित है

हि 'यः मद्भक्तः सः मे प्रियः' (१२.१४,१६) इति ईरणात् हि कश्चित् एव भक्तः (भवति। तत्र) सर्वत्र उत्कर्ष (ऊर्ध्वं कर्षणः) कथनात् पुष्टिः.. वृद्धिः अस्ति इति निश्चयः॥

क्योंकि 'जो मेरा भक्त वो मुझे प्रिय' (गीताजी १२.१४,१६) ऐसे कथनसे प्रेरित होकर सचमें कोईक ही भक्त (होता है। वहाँ) सर्वत्र उत्कर्ष (ऊपर खींचनेवाले) कथनसे पुष्टि.. वृद्धि.. अनुमोदन मिलता है, ऐसा निश्चित.. सिद्ध होता है।

तात्पर्य : गीताजीका बारहवाँ अध्याय 'भक्तियोग' है। उसमें अंतिम आठ श्लोकोंमें भक्तके अद्वेष्टा, मैत्रः, करुणः से लेकर स्थिरमतिः जैसे छत्रीस गुण दर्शायें है। इस प्रकरणका नाम 'धर्म्यामृत' है, अर्थात् जीवनमें धरने जैसा अमृत! श्रीभगवान कहतें है कि ये गुण जो धरतें है वे मुझे अतिशय प्रिय है।

आचार्यश्री पूछते है, इस कथनसे प्रेरित होकर कितने भक्त होते है? यदि भक्ति अर्थात् भगवानको प्रिय होना.. पसंद आना, ऐसा अर्थ लें तो 'एसा भक्त मुझे प्रिय है' उसके जैसी भगवानकी पुष्टि.. भगवानका समर्थन ओर कहाँ मिलेगा?

कोई भगवानके लिये कहें और भगवान स्वयं अपने बारेमें कहें उसमें अंतर होगा कि नहीं? और भगवान जहाँ स्वयं कहतें हो कि मुझे यह पसंद है.. प्रिय है, उसके बाद भगवानको क्या पसंद है? ऐसा कहीं ओर खोजनेकी या पूछनेकी आवश्यकता रहेगी? ना। आचार्यश्री कहतें है, भगवानका माननेमें ही सभी प्रकारका उत्कर्ष है, दूसरा अर्थहीन है! कोई एक वात घूमती फिरती आयें तो कितनी बदल जाती है? उसका सभीको अनुभव है, ऐसा भगवानके बारेमें हुआ है और इसलिये हमारी भक्तिमें कोई भलीवार नहीं है। तो गीताजीमें भगवानने कही हुई भक्तिसे स्वयं अपना जीवन पुष्ट करें, ऐसा आग्रह है।

५ न सर्वोऽतः प्रवाहाद्धि भिन्नो वेदाच्च भेदतः।
यदा यदेति वचनात् नाहं वेदैरितीरणात्॥

न	सर्वः	अतः	प्रवाहात्	हि	भिन्नः	वेदात्	च	भेदतः
नहीं	सभी	तभी	प्रकृतिवशात्	क्योंकि	अलग	वेदसे	और	प्रकारसे
यदा	यदा	इति	वचनात्	न	अहम्	वेदैः	इति	ईरणात्
जब	जब	ऐसे	वचन.. प्रणसे	ना	मैं	वेदोंसे	ऐसी	प्रेरणासे

हि भेदतः सर्वः न प्रवाहात्, अतः वेदात् भिन्नः च 'यदा यदा हि धर्मस्य..' (४.७) इति वचनात् (च) 'न अहम् वेदैः न तपसा..' (११.५३) इति ईरणात् (भिन्नमार्गे स्थितः इति निश्चयः)॥

क्योंकि प्रकारभेदसे सभी प्रवाहमार्गी नहीं है; ऐसा वेदनिष्ठासे भिन्न होता है और 'जब जब धर्मकी ग्लानी...' (४.७) ऐसे (श्रीभगवानके) वचनसे.. प्रतिज्ञासे (और) 'ना मैं वेदोंसे न तपसे...' (११.५३) ऐसी प्रेरणासे (भिन्नमार्गमें स्थित है।)

तात्पर्य : कितनी सरलतासे विभाग स्पष्ट किये है! भगवान कहतें है कि जब जब धर्ममें ग्लानी.. सुस्ति.. मंदी आती है तब तब, धर्मका संस्थापन करने और साधु पुरुषोंका रक्षण करने मैं आता हूँ। यहाँ दो मार्ग भिन्न हूए! एक प्रवाहमार्गी जो धर्मको जानताही नहीं, अधर्मी है या विधर्मी है! जबकि दूसरा साधु.. धर्मी या सुधर्मी है, मर्यादामार्गी है! वो धर्मको यथावत जानता है, वेदनिष्ठ है और यम-नियमोंका परिपालन करतें है.. मर्यादामें संयमित है।

अधर्मी होना अर्थात् मनुष्यत्वका न होना, पशुवत् या राक्षसवत् जीवन! और विधर्मी अर्थात् विपरित धर्म या विकृत धर्मको ही धर्म मानकर जीना! अंधकारमें दिया प्रगटायें वो धर्मी, दियेका चित्र लाकर प्रकाश हुआ ऐसा मानें वो विधर्मी और दिया करने ही न दें.. प्रकाश होने ही न दें वो अधर्मी!

तीसरा पुष्टिमार्ग कहाँ भिन्न होता है? भगवान कहतें है, मैं ना वेदोंसे.. विद्याओंसे मिलता हूँ या न तो बहोत तपसे मिलता हूँ, नहीं यज्ञोंसे या दान-पुण्योंसे मिलता हूँ। मैं मिलता हूँ मात्र और मात्र भक्तिसे.. भक्तियोगसे! उस भक्तियोगको आचार्यश्री पुष्टिमार्ग आलेखतें है। तो ऐसे तीन मार्गोंका भिन्नत्व सिद्ध होता है। सभीको सभी मार्गोंसे गुजरना है, हम कहाँ है यह जान लेना है!

६ मार्गैकत्वेऽपि चेदन्त्यौ तनुभक्त्यागमौ मतौ।
न तद्युक्तं सूत्रतो हि भिन्नो युक्त्या हि वैदिकः॥

मार्गे एकत्वे अपि चेत् अन्त्यौ तनुभक्ति आगमौ मतौ
मार्गोंका एकत्व फिरभी जो निर्णय तनुभक्ति आगम-निगमके मतसे

न तत् युक्तम् सूत्रतः हि भिन्नः युक्त्या हि वैदिकः
न वो युक्त सूत्र अनुसार भी भिन्न युक्तिसे क्योंकि वेदवाक्य

चेत् आगमौ (आगमः च निगमः) अन्त्यौ मतौ, एकत्वे तनुभक्ति अपि सूत्रतः तत् हि न युक्तम्। हि वैदिकः युक्त्या भिन्नः (उक्तः)॥

जो आगम और निगमके अंतिम मत.. निर्णय, एक तनुभक्ति है, फिरभी सूत्रतः वो तर्कसंगत नहीं है, क्योंकि वेदवाक्य युक्तिसे भिन्न (कहतें है)।

तात्पर्य : निगम.. श्रुति, वैदिक सिद्धांत या शास्त्र और आगम.. तंत्र, जो भी शास्त्रका कार्यान्वित तंत्र। ये दोनों तात्त्विकरूपसे एक ही होंगे। यहाँ तनुभक्ति और वेदवाक्यके अभावमें स्पष्ट अर्थ नहीं मिलता। फिरभी व्यक्तपूजासे लेकर तत्त्वपूजा पर्यंत, अनुमानसे मंतव्य भिन्न न होंगे, पूजाभेद हो सकता है।

हम मानतें है कि पूजा यानी पूजा, कोई ऐसे करें तो कोई वैसे करें! समय और स्थल आधारित तफावत रहेगा ही! ऐसी हमारी मान्यता है। परंतु शास्त्रीय परिभाषामें बहोत अंतर है, जो हमारे ध्यानमें नहीं है। शास्त्रीय मूर्तिपूजामें स्थूल मूर्ति.. अर्चाकी पूजा यह प्राथमिक अवस्था है। उसे तनुपूजा कही है। ईश्वरके कोई आकारसे उसकी पूजाका आरंभ किया, पर वो ही अंतिम अवस्था नहीं है। तनुपूजासे गुणपूजा पर आना होता है। जैसेकि रामकी मूर्तिमें राम एक व्यक्ति स्वरूप देखेंगे और पूजा होगी। उसके आगेकी पगथी है उनके गुणोंकी पूजा! अर्थात् उनके जो गुण.. क्वोलिटीझ है वो आत्मसात् करनी है। रामं भूत्वा रामं यजेत्। अर्थात राम जैसे होकर ही रामकी उपासना हो सकें। और अंतमें तत्त्वपूजा! राम ही विष्णु.. पूर्णब्रह्म तत्त्व है। वैसे तत्त्वरूप मुझे भी होना है ऐसी अभ्यर्थना अर्थात् तत्त्वपूजा! अब जैसे जैसे पूजाके स्वरूप बदलते जायेंगे वैसे वैसे व्यक्तिका मानस.. पूरा व्यक्तित्व ही बदल जायेगा! तनुपूजा करनेवाला विकसित होकर ही तत्त्वपूजा कर सकेगा, इसलिये भेद निश्चित है।

७ जीवदेहकृतिनां च भिन्नत्वं नित्यता श्रुतेः।
यथा तद्वत्पुष्टिमार्गे द्वयोरपि निषेधतः॥

जीव-देह-कृतिनाम्	च	भिन्नत्वम्	नित्यतः	श्रुतेः
जीव देह कृतियोंकी	और	अलगता	सतत	सुनतें है

यथा	तद्वत्	पुष्टिमार्गे	द्वयः	अपि	निषेधतः
जिस रीतसे	वैसे ही	पुष्टि मार्गमें	भिन्नता	भी	अवरोधरूप

यथा नित्यतः जीव, देह च कृतिनाम् भिन्नत्वम्.. विविधत्वम् श्रुतेः। तद्वत् (तु) पुष्टिमार्गे (ईश्वरस्य स्वीकृतिमार्गे) द्वयः अपि निषेधतः (अयुक्तः। तत्र एकभक्तिः निश्चितः)॥

जैसे हररोज जीव समूदाय, उनके देह और उनकी कृतियोंमें भिन्नता.. विविधता सुनतें है, वैसे ही (विपरित) पुष्टिमार्गमें (ईश्वरकी स्वीकृतिके मार्गमें) दूसरी.. भिन्न रीत भी अवरोधरूप है, (अयोग्य है। वहाँ मात्र एकनिष्ठ भक्ति ही निश्चय है)।

तात्पर्य : इस सृष्टिकी विशेष रचनामें ही विविधता है जैसे कि मनुष्य, उसके देहका ढाँचा एकसरिखा पर सभीके रूप रंग भिन्न.. अलग! कोई एकका चहेरा दूजेके साथ नहीं मिलता! हरेककी चाल भिन्न, वाणी भिन्न, हावभाव भिन्न, स्वभाव भिन्न... अनेक विविधता! प्रकृतिने जो विविध रचना की है उसमें साम्य रखकर भी विषमता रखी ह.. भिन्नता रखी है। यही उसका कौतुक है!

हरेकके स्वभाव भिन्न! मूलतः ज्ञानियोंके ज्ञान भी भिन्न रहेंगे! ब्रह्म-दर्शन भी भिन्न होंगे! इसलिये तो इतने सारे मत-मतांतर है! वाद-विवाद है!

आचार्यश्री कहतें है, जहाँ तक प्रवाहमार्ग या मर्यादामार्ग है वहाँ तक यह असमानता है। जबकी पुष्टिमार्गमें एकमात्र जीवकी परिशुद्धता ही अभिप्रेत है। जीव ब्रह्मस्वरूप होना चाहिये यह प्रथम और अंतिम योग्यता है। पुष्टि.. स्वीकृति उसके बादकी वात है। इसके लिये अव्यभिचारी भक्ति ही एकमात्र आधार है।

क्या डॉक्टरका लडका डॉक्टर कहा जायेगा! ना। वो लडका मेडीकलका अभ्यास करके प्रमाणपत्र प्राप्त करके ही डॉक्टर होगा! दूसरी कोई रीत नहीं है, उसी तरहा भक्तिमार्गमें भक्तके गुण संपादित करके, एकाश्रित होकर ही पुष्ट हो सकेंगे! जो भगवानने कहा है उसी रीतसे जाना होगा!

८ प्रमाणभेदाद् भिन्नो हि पुष्टिमार्गो निरूपितः।
सर्गभेदं प्रवक्ष्यामि स्वरूपांगक्रियायुतम्॥

प्रमाणभेदात्	भिन्नः	हि	पुष्टिमार्गः	निरूपितः
शास्त्र प्रमाणके भेदसे	अलग	ही	पुष्टिमार्ग	निर्मित है

सर्गभेदम्	प्रवक्ष्यामि	स्वरूप	अंग	क्रिया	युतम्
सृष्टिका भेद	कहता हूँ	स्वरूप	अवयव	क्रियाओंका	मेल

पुष्टिमार्गः प्रमाणभेदात् भिन्नः हि निरूपितः। (शास्त्रसंमते अतः)
सर्गभेदम्, स्वरूप अंग क्रिया युतम् प्रवक्ष्यामि॥

पुष्टिमार्ग.. स्वीकृति मार्ग, शास्त्र प्रमाणोंके भेदसे.. विभागोंसे भिन्न ही निरूपित है। (शास्त्रसंमत है ही, उस) सृष्टिका भेद.. रहस्य (कहता हूँ)। स्वरूप-अंग-क्रिया, उनकी संगति अर्थात् स्वभाव, हेतु और कर्मकी युति कहता हूँ।

तात्पर्य : ये तीन मार्ग, आचार्यश्रीका विशेष दर्शन है। जिन मार्गोंमें मनुष्यमात्रका आचरण है, उन मार्गोंके विभाजनका यथावत स्वरूप हमको समझाया है। अब उन मार्गोंकी रचना भगवानने कैसे की है उसका दर्शन करातें है। यह ज्ञान अलौकिक है, अद्भुत है.. श्रुतितुल्य दर्शन है!

प्रवाहमार्ग जो प्राकृतमार्ग है.. प्राकृतिक मनुष्योंका सामान्य गमन है। उससे उपर, मर्यादामार्ग जो सांस्कृतमार्ग है, बहोतसे विद्वानों, ऋषियों, आचार्योंने उनके ज्ञानसे और अनुभवसे रचा हुआ प्रमाणभूत सिद्धांतोंका मार्ग है। उस पर चलनेसे गंतव्य तक पहोंचेगें ही, मनुष्य जीवन सार्थक होगा ही! परंतु उससे उपर एक मार्ग ओर है, उसका नाम है पुष्टिमार्ग! भगवानकी स्वीकृतिका मार्ग!

दैवीप्रवाहमें प्रवाहित होकर, मर्यादाओंसे पवित्र और परिशुद्ध होकर, इस पुष्टिमार्गमें प्रवेश लेना है। भक्ति कोई सामान्य खेल नहीं है! ये किसी बापुका बगीचा नहीं कि कोई भी आकर घूम सके! यहाँ भी तपस्या चाहिये, एकनिष्ठ शरणपूर्ण व्यवहार चाहिये। शामळ कहतें है, 'प्रथम पहेले मस्तक रखके फिर लेना है नाम जोने! भक्तिका मारग है शूराका, नहीं कायरका काम जोने!' तब प्रवेश मिलेगा! आचार्यश्री कहतें है, भगवान स्वीकारें ऐसा जीवन बनाना हो तो, गीताजीमें जो कहा है वो जान लो, समझ लो, अपना लो तो कृतार्थ होंगे!

९ इच्छामात्रेण मनसा प्रवाहं सृष्टवान् हरिः।
वचसा वेदमार्गं हि पुष्टिं कायेन निश्चयः॥

इच्छामात्रेण	मनसा	प्रवाहम्	सृष्टवान्	हरिः
इच्छामात्रसे	मनसे	प्रकृतिके	सर्जनहार	भगवान

वचसा	वेदमार्ग	हि	पुष्टिम्	कायेन	निश्चयः
वाणीसे	मर्यादामार्ग	सचमें	पुष्टिमार्ग	देहसे	निश्चितरूपसे

हरिः इच्छामात्रेण मनसा प्रवाहम् सृष्टवान्। वचसा वेदमार्गम्.. मर्यादामार्गम् (सृष्टवान् च) हि (चिन्मय) कायेन पुष्टिम् निश्चयः॥

हरिने.. भगवानने इच्छामात्रसे मानस सृष्टिका निर्माण किया, प्रवाह.. प्रकृतिके स्रष्टा हुए। वाणीसे वेदमार्ग (मर्यादामार्ग रचा और) सचमें, उनकी चिद्रूप कायासे पुष्टिमार्ग है, ऐसा निश्चय है.. निरूपण है।

तात्पर्य : क्या दर्शन है! सर्व सामान्य जीव भगवानके मनमें है.. प्रकृतिमें रमतें है। वो प्राथमिक सृष्टि है.. सामान्य जीव है। इस मानसी सृष्टिके आगे दूसरी बौद्धिक सृष्टि है जिसमें ज्ञानी, विज्ञानी या प्रज्ञानी रमतें है। उनके आदेशसे.. वाणीसे वेदमार्ग.. ज्ञानमार्ग संपन्न है! प्रगतिशील जीवका सांस्कृतिक मार्ग.. मर्यादामार्ग!

प्रवाहमार्ग_ सृष्टि नदीकी भाँति, दीपज्योतिकी भाँति, एक सतत प्रवाह है, जिस मार्गमें प्राकृतिक रीतसे जीवसमूह बहतें है। मर्यादामार्ग_ इस सृष्टिका रहस्य, धर्म-कर्मकी लीला, नीति-नियम वेदनिर्देशित ही है, इसलिये उसके बंधारणसे सीमा.. मर्यादामें रहकर जीना है! इसलिये दैवीजीवोंके लिये वैदिक.. सांस्कृतिक धर्मपालनका मर्यादामार्ग हुआ, जो वाणीसे बना। आगे है प्रिय जीवोंका मार्ग!

पुष्टिमार्ग_ भगवानका देह हाड-मांसका नहीं होता, तैजस है.. चिन्मय है! उस कायासे निर्मित तेजस्वीरूप हुआ मार्ग यह पुष्टिमार्ग है। जो जीव भक्तिमार्गसे आगे बढेंगे वे भगवानके साथ ही खेलेंगे! रास उसका नाम है! यह दर्शन है।

प्रवाहमार्ग.. संपदागत.. दैवी या आसुरी.. प्राकृतिक मार्ग। धर्म-कर्मकी रमत! मर्यादामार्ग.. परंपरागत.. पुरुषार्थ, वर्ण-आश्रमका पालन.. सांस्कृतिक मार्ग और पुष्टिमार्ग.. सात्त्विकतासे शुद्ध भक्तिका स्वीकार हो.. अंगीकार हो, उसे कहते है स्वीकृतिमार्ग! स्वयं भगवानने अपनाया वो पुष्ट! भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः।

१० मूलेच्छातः फलं लोके वेदोक्तं वैदिकेऽपि च।
कायेन तु फलं पुष्टौ भिन्नेच्छातोऽपि नैकधा॥

मूल-इच्छातः फलम् लोके वेद-उक्तम् वैदिके अपि च
मूल इच्छागत फल प्राकृतको वेदमें कहे वेदमार्गमें भी और

कायेन फलम् पुष्टौ भिन्न इच्छातः अपि न एकधा
देहसे फल मिले पुष्टिमार्गे विविध इच्छित भी नहीं एकप्रकारका

लोके.. प्राकृतमार्गे, मूल-इच्छातः (कर्म सिद्धान्ते) फलम् च वैदिके.. मर्यादामार्गे वेद-उक्तम् (नियतम् फलम्)। पुष्टौ.. पुष्टिमार्गे कायेन अपि, (भक्तस्य) भिन्न इच्छातः, न एकधा फलम्॥

लोकमें.. प्रकृतिमार्गे, मूल इच्छा आधारित (कर्मन्याय आधारित) फल मिले और वैदिक.. मर्यादामार्गे, वेदमें निर्देशित (कामनापूर्त नियतफल मिले)। पुष्टिमार्गमें, शरीरसे भी, (भक्तकी) विभिन्न इच्छा आधारित, एकसा नहीं ऐसा फल मिले।

तात्पर्यः सामान्य जीव, पशु-पक्षी और प्राथमिक अवस्थामें रहे हुए माणसोंको, सामान्य कर्म विषयक ज्ञान भी नहीं होता। कर्मशास्त्र क्या, धर्म क्या, ईसकी कोई कल्पना नहीं होती। वे मात्र इच्छापूर्वक कर्म करतें है और उनके फल भुगततें है। उन प्राकृतजीवोंसे आगे गये हुए जीव, वैदिकमार्गे विकास करके सृष्टिके रहस्य जानतें है। कर्मशास्त्रका ज्ञान प्राप्त करके, यज्ञपूर्वक कामनापूर्त कर्म करके, फल स्वरूप स्वर्गपर्यंतके सुख पातें है। पर आवागमनके फेरोंसे मुक्त नहीं होते।

जबकी कर्मोंसे भी आगे जाकर, भक्तिपूर्ण कर्म करते हुए पुष्टिमार्गीजन, इसी देहमें ही विविध फल प्राप्त करनेमें सक्षम होतें है। पुष्टिमार्गीको भगवानका क्या होना है? दास, मित्र, पुत्र, प्रिया वगैरे.. वैसा देह मिलेगा। संबंध एकसे नहीं होते इसलिये कहा कि फल भिन्न है। दूसरा, ज्ञानीभक्तमें.. पुष्ट भक्तमें तो ईश्वर स्वयं आके रहतें है, उपदृष्टा अनुमन्ता भर्ता भोक्ता महेश्वर परमात्मा! (गीता १३।२२) जैसी जिसकी योग्यता! भगवान ही देहमें विराजे.. कायेन! वो ही महापुरुष! भारतीय संस्कृति क्यों गुरुको या गुरुतुल्य महापुरुषको भगवानकी पदवी देती है? कारण भगवान उनके देहमें अवतरीत होतें है। इसलिये कहे जातें है, भगवान पतंजली, भगवान शंकराचार्य, भगवान वल्लभाचार्य...

११ तानहं द्विषतो वाक्यात् भिन्ना जीवाः प्रवाहिणः।
अत एवेतरौ भिन्नौ सान्तौ मोक्षप्रवेशतः॥

तान्	अहम्	द्विषतः	वाक्यात्	भिन्नाः	जीवाः	प्रवाहिणः
उनको	मैं	द्वेषियोंको	वाक्यसे	भिन्न	जीवलोग	प्राकृतिक

अतः	एव	इतरौ	भिन्नौ	स-अन्तौ	मोक्षप्रवेशतः
इसलिये	ही	दूजे दो	भिन्न प्रकारसे	अंतसहितके	मोक्ष देनेवाले

प्रवाहिणः.. प्राकृतिकः (आसुराः) जीवाः 'तान् अहम् द्विषतः क्रूरान्...' (१६.१९) वाक्यात् भिन्नाः (दैवाः)। अतः एव इतरौ (द्वौ) भिन्नौ मोक्षप्रवेशतः सान्तौ (मर्यादामार्गी च पुष्टिमार्गी)॥

प्रवाहमार्गी.. प्राकृतिक (आसुरी) जीवसमूह 'उनको मैं, द्वेषी क्रूर लोगोंको..' (गीता १६.१९) वाक्यसे भिन्न (प्रकारके दैवी है)। ईससे भिन्न दूजे दो प्रकारके पृथक् मोक्षमें प्रवेश पाते, (भव)अंतसहितके है। (मर्यादामार्गी और पुष्टिमार्गी।)

तात्पर्य : जो प्राकृतिक जीव है, जैसे कि जंगली मनुष्य या जो लोग सनातन संस्कृतिसे अंजान है.. अज्ञ है, वे अज्ञानसे पशुवत् जैसे वैसे जीतें है। आसुरी होते दुष्कर्म कर लेतें है। जो भारतीय संस्कृतिको जानकर भी उसकी अवहेलना करके आसुरी होतें है, वे सबसे अधम है। भगवान कहतें है, वे मेरे द्वेषी है, उन क्रूर लोगोंको मैं घोर नरकमें डालता हूँ।

अब यह वाक्य ही सिद्ध करता है कि दूसरे दैवी लोग भी है और वे जीवन विकासके मार्गमें अग्रेसर है। वे दैवी मर्यादामार्गी है, उनसे भी आगे गये हुए ज्ञानमार्गी और भक्तिमार्गी भी अस्तित्वमें है। ये लोग मुक्तिके अधिकारी है और इसलिये भवसागरके अंतवाले है। मृत्यु यह जीवनका अंत नहीं, मुक्ति ही जीवनका अंत है। प्राकृतिक जीव, वो अंत न पाते हुए जन्ममृत्युके फेरे खातें है, जबकी सांस्कृतिक.. वैदिकमार्गी धर्म, अर्थ और काम, इन तीन पुरुषार्थोंको यथावत पूर्ण कर लें तो अंतमें मोक्ष पुरुषार्थ सिद्ध ही है! उसी रीतसे पुष्टिमार्गे, भक्तिपूर्वक ज्ञान प्राप्त करनेवालेका मोक्ष निश्चित है, अतः उनको अंतवाले कहें है।

भारतमें जन्में और भारतीय संस्कृतिको न जानें वे कितनें अभागी है! जब कि हिंदु न होते हुए भी जो सनातनी जीवन जीते है, वे धन्य है! कृतार्थ है।

१२ तस्माज्जीवाः पुष्टिमार्गे भिन्ना एव न संशयः।
भगवद्रूपसेवार्थं तत्सृष्टिर्नान्यथा भवेत्॥

तस्मात्	जीवाः	पुष्टिमार्गे	भिन्नाः	एव	न	संशयः
इसलिये	जीव	पुष्टिमार्गके	विरल	ही	नहीं	संशय

भगवत्-रूप	सेवा-अर्थम्	तत्	सृष्टिः	न	अन्यथा	भवेत्
भगवद्रूपोंकी	सेवा अर्थे	वह	सृष्टि	नहीं	अन्य कारणसे	हुई है

तस्मात् पुष्टिमार्गे जीवाः भिन्नाः एव (सन्ति,) न संशयः। तत् (सेवकसृष्टिः भिन्नः) भगवद्-रूप सेवा अर्थम् भवेत्, न अन्यथा॥

इसलिये पुष्टिमार्गके जीव भिन्न है.. विरल है, इसमें संशय नहीं है। वे (सेवकोंकी सृष्टि, विभिन्न) भगवानके रूपोंकी सेवाके लिये ही हुई है, अन्यथा नहीं.. दूसरा कोई कारण नहीं है। (सृष्टिको टिकाये रखनेका परिबल ही भक्त है!)

तात्पर्य : इस कराल कलिकालमें, जहाँ माणसोंने सर्व मर्यादाएँ पार करी है। एकसे एक बडे, खोटे काम.. दुष्कर्म हो रहें है, वैसे संजोगोमें यह सृष्टि कैसे चल रही है.. भगवान क्यों चला रहें है! वह आश्चर्यकारक है।

क्या भगवान इतनी भौतिक प्रगति देखकर स्तब्ध है? मानवने वैज्ञानिक रीतसे खडी की हुई वसाहतोंसे अचंबित है? मानव चंद्र पर पहोंचा या अंतरिक्षमें घूमता है इसलिये प्रसन्न है? भगवानको मानवके कौनसे वर्तनसे यह सृष्टि चलानेका मन होता है! आचार्यश्री कहतें है, हजारों वर्षोंसे भगवान इस सृष्टिको चलातें है उसका एक ही कारण है, उसके भक्तजन!

आज विज्ञान माणसको माणससे बहोत नजदिक लाया है, परंतु अंदरसे माणस माणससे अतिदूर हुआ है! हरेकके मन विषम है! भौतिकताने सबको भगवानसे दूर कर दिये! ऐसे कालमें भी कोई तो भक्त है.. कोई तो भक्तसमूह है, जिससे भगवानको यह सृष्टि चलानेका मन है.. आनंद है! वे भक्तजन विरल है।

भगवानके अनेक रूपोंमें वे मग्न है। जैसे कि, भक्त दास है तो भगवान शेठ या ठाकोर.. मालिक है! अब दासत्व उसकी सृष्टि.. उसका धर्म! वैसा ही पिता-पुत्र, प्रियतम-प्रिया... सभी संबंधोंका है। भक्ति आधारित सृष्टि होगी! भक्ति अर्थात् संबंध सेवन! इन संबधोंके विरल आकर्षणसे ही यह सृष्टि चलति है!

१३ स्वरूपेणावतारेण लिंगेन च गुणेन च।
तारतम्यं न स्वरूपे देहे वा तत्क्रियासु वा॥

स्वरूपेण	अवतारेण	लिंगेन	च	गुणेन	च
स्वरूपसे	अवतारसे	चिह्नसे	और	गुणसे	तथा

तारतम्यम्	न	स्वरूपे	देहे	वा	न	तत् क्रियासु	वा
विशेष फरक	नहीं	स्वरूपमें	देहमें	वा	नहीं	उन क्रियामें	वा

(ईश्वरः) अवतरेण च स्वरूपेण, लिंगेन च गुणेन, न तारतम्यम् (भवेत्)। न तत् स्वरूपे वा देहे वा क्रियासु (तारतम्यम् भवेत्)॥

(ईश्वरको) अवतारसे या स्वरूपसे, जातिसे या गुणोंसे, विशेष तफावत नहीं (होता, कोई खास अंतर नहीं है।) और उसके स्वभाव या देहमें या क्रियाओंमें (भी कोई बदलाव नहीं होता। उनका सबकुछ भक्तके अनुरूप होता है।)

तात्पर्य : आचार्यश्रीका कहेनेका संदर्भ भगवानकी असीमताका है। हम सीमित है इसलिये, कुछ सीमामें ही सोच सकेंगे, हमारी विचारक्षमता मर्यादित ही रहेगी। जैसे कोई व्यक्ति घरमें है अर्थात् वो कहीं ओर नहीं, कारण उसका एक ही स्वरूप है! वो द्विरूप या बहुरूप धारण नहीं कर सकता! और कर्मफलोंसे बंधित वो बल, मन, धन या बुद्धिकी क्षमतामें सीमित है.. निःसहाय है। जब कि ईश्वरको ऐसे कोई बंधन नहीं, मर्यादाएँ नहीं, कोई विघ्न ही नहीं! ईश्वर जो धारे वो रूप ले सकतें है, एक रूप धरे या एक साथ अगणित रूप ले लें! उनके लिये कुछ अशक्य नहीं। वो यहाँ भी है और सर्वत्र भी है! वो जितने और जैसे मेरे साथ है, वो उतने और ऐसे ही आपके साथ है, सबके साथ है। आंखरहित सब देखतें है, कानरहित सब सुनतें है! आप जहाँ खोजतें है वहाँ नहीं है, जिससे खोजते हो वहाँ ही है! ज्ञानसे शोधें तो ज्ञानमें मिलेंगे, भक्तिसे शोधेंगे तो प्रेममें मिलेंगे!

भगवानको अवतारसे या स्वरूपसे कोई प्रयोजन नहीं है, त्रिगुण या कर्म उसे बांध सकेंगे नहीं इसलिये देह और क्रियाएँ मात्र नामके है! भगवान मात्र और मात्र भक्तके लिये ही नाटक करतें है.. लीला करतें है! वो नटवर है, वो ही नटराज है! जो भक्तका स्वभाव उसके अनुरूप ही भगवानका स्वभाव! तांस्तथैव भजाम्यहम्। (गीता ४.११) जो जैसे मुझे भजे, उनको वैसा ही मैं भजुं!

१४ तथापि यावताकार्यं तावत्तस्य करोति हि।
ते हि द्विधा शुद्धमिश्र-भेदान् मिश्रास्त्रिधापुनः॥

तथा	अपि	यावत्	आकार्यम्	तावत्	तस्य	करोति	हि
फिर	भी	जितना	संपूर्ण कार्य	उतना	उसका	करतें है	ही

ते	हि	द्विधा	शुद्धमिश्र	भेदात्	मिश्राः	त्रिधा	पुनः
वे	क्योंकि	दो प्रकारसे	शुद्ध, शुद्धाशुद्ध	भेदोंसे	मिश्रित	त्रिविध	फिर

तथा अपि तस्य यावत् (अवतारेण) आकार्यम् तावत् (फलिभूतम्) करोति हि। हि ते द्विधा शुद्ध (च अशुद्धि) मिश्र, पुनः त्रिधा भेदात् मिश्राः (हि ते लोकाः त्रिगुणान्विताः)॥

फिर भी उसका जितना (अवतारका) संपूर्ण कार्य, उतना (फलीभूत) करतें ही है। क्योंकि वे लोग दो प्रकारसे, शुद्ध और मिश्र (शुद्धाशुद्ध है)। और फिर तीन प्रकारसे मिश्रित है (क्योंकि लोग त्रिगुणी है)।

तात्पर्य : अवतार या भगवान प्रेषित महापुरुष, आयें और कार्यसंपन्न करके चलें भी जायें! वो कितनोंको पता चलें? भगवान कोई चिह्न.. लेबल तो लगाते नहीं! फोटोमें होता है वैसा, वास्तविक मथ्थेके पीछे वलय नहीं होता! तो कैसे पता चलें कि यह महापुरुष है.. सिद्धपुरुष है या अवतारी पुरुष है?

वो सब मनुष्यके कर्मों पर, पुण्योदय और सत्त्वके उपर आधार रखता है। कोई तुरंत जान जाय, किसीको पहचाननेमें बहोत देर लगे और ज्यादातर लोग तो पासमें हो.. साथमें हो तो भी पता न चलें! सब मनुष्योंके अपने अपने विकास पर निर्भर है। कौन कितने मन-बुद्धिसे शुद्ध है, आचार कितने पवित्र है, वह शुद्धि, अशुद्धि या विशुद्धि ही आधार है। सब जीतें है, उनमें कितने लोग सात्त्विकताके लिये दक्ष है? जीवन सात्त्विक रहे उसके लिये कौन दौडता है?

जीवन सात्त्विक होना चाहये तो अवतारी महापुरुषको पहेचान सकेंगे। क्वचित महापुरुष साथमें न भी हो, फिर भी उनके साहित्यसे जीवनको पुष्टि मिले। गीताजी या उपनिषदोंसे मार्गदर्शन मिले, ज्ञान मिले! सबका आधार सात्त्विक वृत्ति और ज्ञानपिपासा है। भक्त होगा तो भगवानको मिलनेकी उसकी आतुरता ही मिलनका आधार है। कदाचित उस भक्तको मिलने हेतु ही महापुरुष आतें है!

१५ प्रवाहादि विभेदेन भगवत्कार्यसिद्धये।
पुष्ट्या विमिश्राः सर्वज्ञाः प्रवाहेण क्रियारताः॥

प्रवाह	आदि	विभेदेन	भगवत्	कार्य	सिद्धये
प्रवाहमार्ग	आदिके	विशेष भेदसे	अवतार	कार्य	सिद्धि हेतु

पुष्ट्याः	विमिश्राः	सर्वज्ञाः	प्रवाहेण	क्रियारताः
पुष्टिमार्गीलोग	विमिश्रित है	सर्व ज्ञानी	प्रवाहितोमें	कार्यरत है

(संसारेषु) प्रवाह आदि (मार्गेण) विभेदेन, भगवद् कार्यम् सिद्धये, (फलिभूतम् भवेत्)। पुष्ट्याः (अपि त्रयेस्थिताः) विमिश्राः, सर्वज्ञाः (दैवी) प्रवाहेण (संस्कृतेः) क्रियारताः (मर्यादाचाराः)॥

(संसारमें) प्रवाह आदि (मार्गोंके) प्रकारसे, अवतारीकार्य सिद्ध होता है, (फलीभूत होता है।) पुष्टिमार्गीजन (भी त्रये स्थित) विमिश्रित है। सर्व ज्ञानी (सात्त्विकों, या दैवी) प्राकृतोंमें, (संस्कृति अर्थे) कार्यरत (मर्यादामार्गी है)।

तात्पर्य : तद्दन स्पष्ट आलेखन! अवतारी पुरुष आयें और तीनों प्रकारके मानवोंका उत्थान करके चले जायेंगे! कुछ लोगोंको पता चलें, अन्यथा पूरा मानवलोक सोता रहेगा! अवतारी कार्यमें प्राकृतलोगोंको दैवीमार्ग मिले! असुरत्व छोडनेकी तक मिले! दैवी लोगोंको मार्गदर्शन मिले, मर्यादीलोगोंको स्थल-काल आधारित ज्ञान मिले। वे लोग पुष्टिमार्ग.. भक्तिमार्गमें आगे बढेंगे।

अत्रे आचार्यश्रीने, पुष्टिमार्गीओंको अर्थात् जो भक्तिमार्गमें स्थित है उनको, विशेष संदेश दिया है। स्पष्ट कहा है कि पुष्टिमार्गी भी त्रये स्थित है। त्रिगुणोंसे आवृत्त है, उसमें सात्त्विकता बढानी चाहिये। विमिश्रित न रहें!

सभी बाबतोंमें भगवानकी कृपाका आधार नहीं रखतें! जहाँ जो करना है वह मनुष्यको स्वयं करना है। कुछ वय तक माँ बालकको खिलायें, बादमें स्वयं ही खाना पडता है। वैसे हमेशां, कनैया तेरा है आधार, करके बैठ नहीं सकते! याद रहे, पिछे कहा है वैसे, कर्म और ज्ञान आधारित ही फल मिलेगा। हमने कितनी सेवा.. पूजापाठ किये, कितने धाम घूमे, यह सब गौण है! आचार्य स्पष्ट कहतें है, अवतारके कार्यमें कितने उपयोगी हुए? कितने लोगोंको मिलके उनके जीवनमें प्रकाश किया? संस्कृतिके लिये कितने कार्यरत हुए? वो देखा जायेगा।

१६ मर्यादया गुणज्ञास्ते शुद्धाः प्रेम्णातिदुर्लभाः।
एवं सर्गस्तु तेषां हि फलं त्वत्र निरूप्यते॥

मर्यादयाः	गुणज्ञाः	ते	शुद्धाः	प्रेम्णा	अतिदुर्लभाः
मर्यादामार्गे	गुणोंके जानकार	वे	शुद्ध.. पुष्ट	प्रेमपूर्ण	अत्यंत दुर्लभ

एवम्	सर्गः	तु	तेषाम्	हि	फलम्	तु	अत्र	निरूप्यते
ऐसे	सृष्टि	तो	उनके	ही	फल	मात्र	यहाँ	निरूपे है

ते मर्यादयाः गुणज्ञाः (पुष्ट्याः), शुद्धाः प्रेम्णा, अतिदुर्लभाः (महामानवाः)। एवम् सर्गः तु तेषाम् फलम् तु अत्र निरूप्यते॥

वे मर्यादामार्गमें गुणज्ञ (गुण-कर्मके जानकार या गुणातीत, पुष्टिमार्गसे) परिशुद्ध प्रेमपूर्ण हुए, अति दुर्लभ (महापुरुष होतें है)। इस तरह यह सृष्टि तो, उनके ही फलमात्र यहाँ निरूपित करती है.. अर्पण करती है।

तात्पर्य : भगवान किन लोगोंको पुष्टि देंगे? जो लोग मर्यादी.. स्वयं जागृत है, यम-नियमके आचारोंसे तपस्वी है, परिशुद्ध है और त्रिगुणोंका नियमन करतें है, जगत प्रति जिनका व्यवहार प्रेमपूर्ण है। आचार्यने गहनतासे समझा दिया कि ऐसे महापुरुष विरल है.. दुर्लभ है, उनमें भगवान पूर्णरूपसे आ बसेंगे!

आज कलिकालमें हुआ है क्या? माणस किसी संप्रदायमें संलग्न होगा या वहाँ ही डटा रहेगा, और ऐसे वहममें रहेगा कि हमारा उद्धार हो गया! विश्वका कोई भी संप्रदाय देख लो! यहुदी हो या ख्रिस्ती, ईस्लाम हो या ताओ-माओ! कोई भी संप्रदाय! हिन्दुओंमें संप्रदायोंकी कहाँ खोट है? सनातनी थे उसके सांप्रदायिक हो गये! और फिर व्यक्ति जितना सांप्रदायिक.. जितना कट्टर, उतना तामसिक! उतना पछात! गति अटकी ही समझो! इसलिये स्वयं अभ्यास करना है। गीताजी वो ही समझाती है, तू ही तेरा उद्धारक! सब स्वयं ही समझना पडेगा और करना पडेगा। गीता यानी गीता! वैश्विक मानवधर्मग्रंथ! मानवमात्रको मार्गदर्शन!

आगे कहतें है, ऐसे महापुरुष जो निष्काम कर्म करतें है, वे फल उनको नहीं मिलते, इस सृष्टिमें गीरतें है और सृष्टि व्यवस्थित गतिमान रहती है। यह सृष्टि उनके पुण्योंसे चलति है! पूर्ण शास्त्रीय वात है कि जगतमें कर्मचक्र ही कार्यरत है, सभीके जीवनका आधार ही कर्म है। निष्काम कर्म ही मुक्त करेंगे।

१७ भगवानेव हि फलं स यथाविर्भवेद्भुवि।
गुणस्वरूपभेदेन तथा तेषां फलं भवेत्॥

भगवान	एव	हि	फलम्	सः	यथा	आविर्भवेत्	भुवि
भगवान	ही	सचमें	फलस्वरूपे	वो	जैसे	स्वयंप्रगट है	पृथ्वी पर

गुण-स्वरूप-भेदेन	तथा	तेषाम्	फलम्	भवेत्
गुण स्वरूपके भेदसे	तथा	उनमें	फलस्वरूप	होतें है

सः (महापुरुषः) हि फलम्, भगवान एव आविर्भवेत् यथा, भुवि (विचरेत्)। तथा तेषाम् गुण-स्वरूप भेदेन फलम् भवेत्॥

वो (महापुरुष ही) सचमें फलस्वरूप, भगवानके ही आविर्भाव.. प्रागट्यकी भाँति, पृथ्वी पर (विचरण करतें है)। और उनके गुण.. दैवी तत्त्व (और) स्वरूप.. विचरणका भाव.. स्वभाव, उनके भेद आधारित फलस्वरूप होतें है।

तात्पर्य : यदा यदा हि धर्मस्य... भगवान आविर्भाव पातें है, कब? जब भक्तलोग विमासणमें हो, मार्ग दिखता न हो, प्रगतिमें रुकावट हो तब। जो जन्मों जन्मसे अविश्रांत परिश्रम करके भक्त हुआ हो, ब्रह्मीभूत हुआ हो वैसे महापुरुषके देहमें ही स्वयं भगवान बस जायें! वो अन्य जनोंको, ज्ञानीओंको या भक्तोंको मार्गदर्शन करें। महापुरुषे देहमें, जैसे पिछे कहा, भगवान ही विचरण करतें है। उनके कर्महीं इस पृथ्वी पर लहेरातें है, जो सात्त्विक लोगोंको सहायभूत होतें है। यह सृष्टि उनके लिये कार्यरत है!

इस महापुरुषके सान्निध्यमें कितने ही लोगोंको जीनेकी प्रेरणा मिले, कितने ही भक्तोंका उत्साह बढें, साधकोंको पीठबल मिले और कितने ही सत्कर्मोंका उदय होय। ये सब शांतिसे होता रहता है! सात्विकलोगोंको उसका पता चलें और उनके कार्यमें जुडेंगे। राजसिकोंको बहोत असर न होगी, उनको लगे कि कुछ चलता है! देखते है क्या होता है! तामसिकोंको सब विपरित दिखेगा! कुछ भ्रम होगा और विरोध करनेमें लग जायेंगे। इस तरह गुणोंसे उनको असर होगी, फिर उसी तरहके कर्म होंगे। अंतमें जैसा करो वैसा भरो!

इसलिये नित्य सात्त्विक रहेनेका प्रयत्न करना चाहिये, जिससे भगवानको या महापुरुषको पहेचान सकें, उनकी समीप जा सकें।

१८ आसक्तौ भगवानेव शापं दापयति क्वचित्।
अहंकारेऽथवा लोके तन्मार्गस्थापनाय हि॥

आसक्तौ	भगवान	एव	शापम्	दापयति	क्वचित्
(दोनों) आसक्त	भगवान	ही	श्राप	दिला दें	कभी कहीं

अहंकारे	अथवा	लोके	तत्	मार्ग	स्थापनाय	हि
व्यक्तिमें	अथवा	लोगोंमें	उस	मार्ग	स्थापना हेतु	क्योंकि

(द्वौ) आसक्तौ! (ततः) भगवान एव क्वचित् शापम् दापयति!
(अवतरण हेतु) हि अहंकारे अथवा लोके, तत् मार्ग स्थापनाय॥

(महापुरुष और भगवान दोनों, एकदूजे पर) आसक्त है! (अतः) भगवान ही कहीं शाप दिला दें! (जिससे पृथ्वी पर आना हो जाय!) क्योंकि, व्यक्तिगत या समष्टिगत, जो भी मार्गकी स्थापना हो सकें। (किसी एकके या सर्वके मार्गदर्शन करने हेतु प्रगटते है! महापुरुषके साथ भगवान।)

तात्पर्य : ऐसा लगता है कि आचार्यश्री अपना ही अनुभव नहीं कह रहे! कारण, वे यहाँ कर्मोंसे आये हो ऐसा तो लगता नहीं! कोई इच्छा या भोग भुगतने रह गयें हो ऐसा भी प्रतीत नहीं होता। जगजाहेर है कि स्वयं भगवानने ही जीवनदान दिया है! जिससे दिव्य बालकरूपसे बचपनसे ही प्रसिद्ध थे।

ऐसा लगता है कि, एकाद महापुरुष मुक्त होकर इस लोकसे गये हो, फिर वापस आनेका कोई कारण नहीं! पर भगवानको उसके साथ रहेनेकी आसक्ति हुई हो! भगवान इच्छा करें इस महात्माके संग रहनेकी! और भगवानके संग रहनेकी महात्माकी आसक्ति तो है ही! यहाँ भगवान दूसरा रास्ता निकाले, किसीसे श्राप दिला दें! जैसे कि कोई अग्नि जैसा तेजस्वी जीव स्वर्गमें आयें और इंद्र जैसा कोई कारणसे कह दें, 'तुझे श्राप देता हूँ, जा पृथ्वीलोकमें वस!' इंद्रको तो पता भी न हो कि उसका मन भगवानने ही घूमाया है! और पृथ्वी पर दोनों आ जाय.. भक्त और भगवान! भक्तका कलेवर और वसवाट प्रभुका! नाम हो जाय वल्लभका! काम हो जाय प्रभुका! दें दें लोगोंको भक्तिमार्ग!

भगवान कोई ऐसा बडा काम भी न करावें जिससे पूरा जगत बदल जाय! सब हिसाबसे ही होता है! जिनको जितना मिलना है उनको उतना ही मिले!

१९ न ते पाषण्डतां यान्ति न च रोगाद्युपद्रवाः।
महानुभावाः प्रायेण शास्त्रं शुद्धत्वहेतवे॥

न	ते	पाषण्डताम्	यान्ति	न	च	रोगात्	उपद्रवाः
नहीं	वे	पाखंडपनको	पाते है	नहीं	और	रोगोंके	उपद्रवोंको

महानुभावाः	प्रायेण	शास्त्रम्	शुद्धत्व	हेतवे
महापुरुषलोग	मुख्यत्वे	शास्त्रके	शुद्धिकरण	हेतु काज

(अपितु) ते पाषण्डताम् च रोगात् उपद्रवाः न यान्ति। महानुभावाः प्रायेण शास्त्रम् शुद्धत्व हेतवे (परिभ्रमन्ति)॥

(चूँकि) वे पाखंडताको प्राप्त नहीं होते और रोगोंके उपद्रव भी नहीं पाते। (पाखंड या महामारी उनसे दूर रहतें है।) महापुरुष मुख्यत्वे शास्त्रोंके (या परंपराओंके) शुद्धिकरणके लिये ही (परिभ्रमण करतें) है।

तात्पर्य : अब जब कि भगवानने ही अपनायें हो, उन महापुरुषोंको इस जगतमें क्या चाहिये? कुछ भी नहीं, अपितु कुछ देने आतें है! भगवान ही लेकर आयें हो उनको कोई चाल चलनेकी या पाखंड रचनेकी विधि रहेगी? ना।

पाखंड कौन करेगा? जो आत्मज्ञानी नहीं है या स्वीकृत महापुरुष नहीं वो। उसको पोषाक द्वारा या टीले टपके या मालाएँ धारण करके बताना पडे कि सिद्ध है! चेले-चमचे खडे करने पडे, वाह वाह करवानी पडे कि ब्रह्मज्ञानी है, बहोत पहोंचे हुए बाबा है! ऐसा लोगोंमें विश्वास जताना पडे! भव्य आसन पे विराजमान होकर, बडे बडे धनाढ्य आकर नमते हों, ऐसे द्रष्य करने पडे! तब जाके लोगोंको लगे कि बडा विद्वान है! भगवत् प्रेषित सच्चा महात्मा यहाँ अलिप्त है।

जो आत्मज्ञानी या पुष्ट महात्मा है उसको यह सब करनेकी क्या आवश्यकता? वो तो शांतिपूर्वक उनका काम.. प्रभुकार्य करतें रहेंगे। श्रीवल्लभने तीन बार भारतकी पदयात्रा की थी। किसीने बुलाये थे? उनको वाह वाह चाहिये थी? नाम करना था? क्यों घूमे! भगवानके लिये, भगवानके साथ ही पदयात्रा की! जिससे लोग भक्ति समझ सकें, मानव जीवन सार्थक कर सकें। बेठकें तो अगणित की होगी परंतु जिन लोगोंने कृतज्ञतापूर्वक याद रखा कि यह महापुरुष यहाँ आये थे, वे बैठकें स्मृतिमें है, दूसरी सब प्रभु जानें!

२० भगवत्तारतम्येन तारतम्यं भजन्ति ते।
वैदिकत्वं लौकिकत्वं कापट्यात्तेषु नान्यथा॥

भगवत्	तारतम्येन	तारतम्यम्	भजन्ति	ते
भगवानके	चयनका	ओर चयनकरके	भजतें है	वे

वैदिकत्वम्	लौकिकत्वम्	कापट्यात्	तेषु	न	अन्यथा
वेदमूलक	प्रचलितमूलक	कपटभाव	उनमें	नहीं	कोई भी

ते भगवत् तारतम्येन तारतम्यम् (लोकसंग्रहेण) भजन्ति। लौकिकत्वम् (दैवी प्राकृतभावे च) वैदिकत्वम् (सांस्कृतिकभावे भजन्ति)। तेषु अन्यथा न कापट्यात्॥

वे भगवानके चयनको (जैसेकी गीताजीके सिद्धांतोंको लोकस्तरपर) चयन करके भजतें है.. सेवतें है। लौकिकरीतसे.. दैवी प्रकृतिभावसे, वैदिक.. सांस्कृतिकभावसे (भजतें है.. पूजतें है।) उनमें अन्यथा कोई कपटभाव नहीं होता।

तात्पर्य : महापुरुषको कपट करनेका कारण क्या है? जिसका जतन साक्षात् भगवान करते हों वहाँ, लोगोंके साथ कपट या धोखाधडी वो क्युं करेंगे? इसलिये महात्मामें कोई कपटभाव नहीं होता, रख ही नहीं सकते!

नेताएँ, पंडितजन, बन बैठे धर्माधीश या कुछ संस्थाएँ कपट करके लोगोंका धन छिनतें है; खोटी वार्ताएँ और इतिहास बनाके अनुयायीओंको भरमातें है। लोगोंको पता ही नहीं चलता सच क्या गलत क्या! भेडोंकी तरहा चले जाते है। समझे विना विश्वास रखना ये भी अंधा अनुकरण ही है और लोग वैसे चलते भी है। लोगोंको फसानेका यह कलिकालका ही प्रपंच है।

भगवान ऐसेमें, सच्चे भक्तोंके मार्गदर्शन हेतु, महापुरुषको भेज देतें है! साथमें भी आ जाय! जैसी भक्तोंकी योग्यता! यह महापुरुष करेंगे क्या? नया तत्त्वज्ञान निर्माण करेंगे? ना। जो वेद-उपनिषदोंका गूढ ज्ञान भगवानने गीताजीमें सरल किया.. चयनकरके अपनी समक्ष रखा, उसी तत्त्वज्ञानसे जीयेंगे! हमारे लिये ओर सरल करेंगे। भगवानने जो कहा उसे छानकर, जो हमको उपयोगी है वो परोसेंगे। जिससे अपना मार्ग सरल हो। बादमें कालक्रमसे उनकी अनुपस्थितिमें विकृति या दूषणो घूस जाय वो सांप्रदायिक वात अलग है।

२१ वैष्णवत्वं तु सहजं ततोऽन्यत्र विपर्ययः।
संबन्धिनस्तु ये जीवाः प्रवाहस्थास्तथा परे॥

वैष्णवत्वम्	हि	सहजम्	ततः	अन्यत्र	विपर्ययः
वैष्णवपन	क्योंकि	स्वाभाविक	इससे	दूसरे कोई	विपरीत

संबन्धिनः	तु	ये	जीवाः	प्रवाहस्थाः	तथा	अपरे
संबंध धरतें	परंतु	जो	जीवसमूह	प्रवाहमार्गी	तथा	अन्य जीव

हि (तेषु) वैष्णवत्वम् साहजम्, तु ततः अन्यत्र विपर्ययः संबंधिनः ये जीवाः प्रवाहस्थाः तथा अपरे (आसुरी जीवाः)...

क्योंकि (उनमें) वैष्णवत्व.. विष्णुका प्रेमभाव सहज है.. साथमें ही प्रगट है। परंतु इससे विरुद्ध विपरीत संबंध धरतें, जो जीव (है वे) प्रवाहस्थ.. प्राकृतिक है.. पशुवृत्तिके है तथा अपरे.. ओर भी (आसुरी जीव है।)...

तात्पर्य : यहाँ विष्णुका स्मरण क्यों किया? कारण विष्णु सृष्टिके पालक है.. पोषक है और वो प्रेमपूर्वक ही सभीको संभालतें है.. पोषतें है। विष्णुके इस प्रेम तत्त्वके साथ ही महापुरुष जगमें विचरतें है। उनका व्यवहार प्रेमपूर्ण, उनका आदान-प्रदान प्रेमपूर्वक, उनके विचार-विहार प्रेमदायी! मनुष्य क्या पूरा समाज, लोकसमूह बदल दें! मात्र प्रेमके स्पर्शसे! मात्र भक्तिकी शक्तिसे!

उनके सामने विपरित जीव खडे होंगे ही! कोई भी अवतार देखें, महापुरुष देखें, उनके सामने कोई असुर या राक्षस मिलेगा! धर्मीके सामने विधर्मी मिलेंगे, होंगे ही! जो सुधरना.. बदलना नहीं चाहेंगे। इसे सृष्टिकी संरचना कहो, रमतका भाग कहो या भक्तोंकी कसोटी कहो; सज्जनके सामने विरोधी.. दुर्जन आयेंगे ही!

महापुरुषके साथ भगवान है तो क्या हुआ, उनको विघ्न नहीं होतें! उनको कठिनाईयां नहीं आई? उनके जीवन देखेंगे तो पता चलेगा कि वे सरलतासे महात्मा नहीं हुए, कठिन तप किया है.. सहन किया है और प्रेमपूर्ण व्यवहार किया है तब महापुरुष हुए है। कदाचित लोकसंग्रह हेतु.. हमारे मार्गदर्शनके लिये भी होगा! अब यहाँ अपरे शब्दसे दूसरे कुछ लोगोंकी वात करतें है, वे कैसे है? वे लोग आसुरी नहीं पर दैवी मार्गकी ओर बढे भी नहीं, वे दोराहे पर खडें है, उनको मार्गदर्शनकी अत्यंत आवश्यकता है। उनका वर्णन अबके श्लोकमें करेंगे।

२२ चर्षणीशब्दवाच्यास्ते ते सर्वे सर्ववर्त्मसु।
क्षणात्सर्वत्वमायान्ति रुचिस्तेषां न कुत्रचित्॥

चर्षणी-शब्द-वाच्याः	ते	ते	सर्वे	सर्ववर्त्मसु
व्यभिचारिणी स्त्री शब्दके लायक	वे	वे	सभी	सभी जगहमें

क्षणात्	सर्वत्वम्	आयान्ति	रुचिः	तेषाम्	न	कुत्रचित्
क्षणभर भी	समग्रताको	आलेखतें है	रुचि	उनकी	नहीं	कहीं भी

ते सर्वे, चर्षणी शब्द-वाच्याः, ते सर्व-वर्त्मसु (भ्रमन्ति च) क्षणात् सर्वत्वम् आयान्ति। तेषाम् कुत्रचित् न रुचिः॥

वे सभी, चर्षणी.. व्यभिचारिणी स्त्री शब्दके सीधे अर्थसे, सर्व मार्गोमें (भटकते रहते है और) क्षणभर समग्रताके आवेशमें आतें है। उन लोगोंमें (कोई भी) कहीं भी रुचि.. रस नहीं होता। (आवेश उतर जाता है।)

तात्पर्य : सभी प्राकृतलोग तामसी नहीं होते, असुर नहीं बनते। कुछ राजसिक होतें है। उनको हरेक बाबतमें धगश होती है, बहोत प्रवृत्तिशील होतें है पर स्थिर नथी होतें। वे खूब चंचल होतें है, एक प्रवृत्तिसे संलग्न नहीं रह सकतें, बदलते रहतें है। वे नहीं गुणधारी होते, नहीं पुरुषार्थ कर सकतें, नहीं ईश्वरमें श्रद्धा रहती, नहीं कोई संप्रदायमें रस या नहीं सत्संग प्रवृत्ति.. और होगी तो भी आवेशपूर्वक.. क्षणिक! धैर्यपूर्वक कहीं भी टिक नहीं सकते।

इसलिये आचार्यश्रीने उनके लिये चर्षणी शब्द लिखा है। संस्कृतमें दो शब्द है, 'चर्षणि' अर्थात् मनुष्य या मनुष्यजात और 'चर्षणी' अर्थात् कुलटा.. व्यभिचारी स्त्री। यहाँ दीर्घ-ई है इसलिये ये राजसिक मनुष्य चर्षणि न होते हुए चर्षणी जैसे हो जातें ह.. सभी जगह भटकतें है। गति क्या होगी? आज यह पसंद है, कल दूसरा पकडेंगे। कोई कहे यह अच्छा है तो उसके साथ, दूजा कहेगा यहाँ जल्दी काम होगा तो उसके साथ चलेगा! उनको कहीं भी रुचि नहीं लगती।

जिनको विकास करना है वे एक प्रवृत्ति पकडेंगे! फिर उस प्रवृत्तिके लिये जहाँ भी, जितना भी अभ्यास करना पडे, करना चाहिये। वहाँ राजसिक वृत्ति काममें लगानी चाहिये। जिसके पाससे शीखना मिले, शीख लेना चाहिये। परंतु ध्येय एक रखना होगा। ध्येय और पद्धति नहीं बदला करते।

२३ तेषां क्रियानुसारेण सर्वत्र सकलं फलम्।
प्रवाहस्थान्प्रवक्ष्यामि स्वरूपांगक्रियायुतान्॥

तेषाम्	क्रियानुसारेण	सर्वत्र	सकलम्	फलम्
उनमें	कर्मकांड अनुसार	सभी जगह	अखिल	फल

प्रवाहस्थान्	प्रवक्ष्यामि	स्वरूप-अंग-क्रिया-युतान्
प्रकृतिस्थितको	कहता हूँ	स्वभाव हेतु क्रियाके मिलापको

तेषाम् प्रवाहस्थान् (प्रवाहमार्गे) स्वरूप-अंग-क्रिया-युतान्, सर्वत्र क्रियानुसारेण सकलम् फलम्, प्रवक्ष्यामि॥

उनमेंसे, प्रवाहस्थानमें स्थित.. प्राकृतोंको (प्रवाहमार्गमें) स्वभाव-हेतु-क्रियाकी युतिको.. मेलको, सर्वतरफ क्रिया अनुसार प्राप्त होते समस्त फलको कहता हूँ।

तात्पर्य : भगवानने गीताजीमें सोलहवें अध्यायमें जो असुरोंका.. प्राकृत जीवोंका वर्णन किया है, वो समझने जैसा है। वे इतनी हद तक जातें है कि उनको फिरसे मनुष्य देह मिलेगा ही नहीं! आचार्यश्री उन प्राकृतोंका विश्लेषण करेंगे, हमको ओर सरलतासे समझायेंगे। पहले स्वभाव-हेतु-क्रियाको समझें।

स्वभाव अर्थात् प्रकृति.. जीवका आंतरिक बंधारण। भाव तो बहोतसे है, कामसे लेकर क्रोध, लोभ, मोह... ये षडरीपुएँ भाव है। वैसे प्रेम, अहिंसा, ज्ञान... ये सभी भाव ही है। अब भाव तो अनेक है पर, जीवका मुख्य भाव कौनसा है? वह भाव उसका स्वभाव होगा! हम देखतें है कि कुछ लोगोंका जन्मसे क्रोधी स्वभाव होता है, वो बदलना उसके लिये कठिन होता है। वैसे ही सभी भावोंका होता है। स्वभाव बदलना कठिन है.. दुष्कर है पर अशक्य.. असंभव नहीं है।

स्वभावके अन्य कारणोंमें वंशानुगत, संगति, आदत, शिक्षा, त्रिगुण... अनेक परिबल है। यह स्वभाव ही जीवनका सबसे बडा आधार है। स्वभाव अच्छा तो आधा जीवन जिता, स्वभाव बिगडा तो अनेक भव बिगडे समझो! इसलिये सात्त्विक स्वभाव पर भार दिया है। स्वभाव सात्त्विक होगा तो कर्म सात्त्विक होंगे.. कर्मका हेतु अच्छा होगा और क्रियाएँ व्यवस्थित होगी तो फल आपनेआप ही अच्छा मिलेगा, उससे प्रगति होगी। हेतु जितना दुष्ट परिणाम उतना ही भयंकर! इससे बचनेके लिये आचार्यश्रीने प्राकृतमार्ग प्रथम समझाया!

२४ जीवास्ते ह्यासुराः सर्वे प्रवृत्तिं चेति वर्णिताः।
ते च द्विधा प्रकीर्त्यन्ते ह्यज्ञदुर्ज्ञविभेदतः॥

जीवाः	ते	हि	आसुराः सर्वे	प्रवृत्तिम्	च	इति वर्णिताः
जीवगण	वे	क्योंकि	आसुरी सभी	प्रवृत्ति	और	ऐसा वर्णन है

ते	च	द्विधा	प्रकीर्त्यन्ते	हि	अज्ञ	दुर्ज्ञ	विभेदतः
वे	और	दो रूपसे	प्रसिद्ध है	ही	अज्ञानी	दुष्टज्ञानी	भेदपूर्वक

हि ते सर्वे आसुराः जीवाः 'प्रवृत्तिम् च निवृत्तिम् च।।' (१६.७) इति वर्णिताः। च ते विभेदतः हि अज्ञ-दुर्ज्ञ द्विधा प्रकीर्त्यन्ते॥

क्योंकि वे सभी आसुरी जीव, 'प्रवृत्ति या निवृत्तिको नहीं जानतें आसुरीजन!' (गीता १६.७) ऐसा वर्णन किया है और वे भेदपूर्वक ही अज्ञ.. अज्ञानीजन (और) दुर्ज्ञ.. दुष्ट ज्ञानवाले, दो प्रकारसे प्रसिद्ध है।

तात्पर्य : तामसिक या आसुरी जीव, सद्प्रवृत्तिमें जु नहीं सकते और दुष्ट प्रवृत्ति छोड नहीं सकते, कारण वे प्रवृत्तिके यथार्थ स्वरूपको जान नहीं पातें। अब उन असुरोंके बारेमें बहोत जानतें है, उसके वर्णनकी जरूर नहीं है; पर आचार्यश्रीने जो भेद समझाया है, उसका महत्व है।

हरेक मनुष्य कुछ तो जानता है, कुछ जाननेको इच्छुक है। अब प्राकृत जीवनमें जो कुछ प्रथम जाननेको मिले, उससे जीवन बनेगा! उसमें दैवीसंपदा धरातें जीवो सन्मार्गपे जायेंगे.. सात्विकज्ञान प्राप्त करेंगे; जब कि राजसिक या तामसिक अज्ञानी रहेंगे अथवा दुष्टज्ञान पायेंगे। इससे तीन भेद हुए, सुज्ञ-अज्ञ-दुर्ज्ञ। यहाँ आचार्यश्री अज्ञ.. अज्ञानी और दुर्ज्ञ.. दुष्ट ज्ञानवालोंकी वात करतें है।

समाजमें जो दुषण है, असामाजिकता है या त्रास है वे सभी दुर्ज्ञानीओंसे है। दुष्टज्ञान अर्थात् ज्ञानसे विपरित.. जीवनमुल्य रहित और अहंकारसे भरा हुआ ज्ञान! जैसे कि 'हम ही राज करने आयें है, ओर सभी शत्रु है, उनको जीनेका हक्क नहीं।' ऐसे ज्ञानसे भरे हुए! अज्ञानी रहेना अच्छा है पर दुर्ज्ञानी होना अर्थात् अपने खुदके जीवनका अधःपतन और समाजकी सत्यानाशी.. त्रास करना! यदि अज्ञानी ज्ञानवानके साथ रहेगा तो सुधरनेकी तक है, पर यदि दुर्ज्ञानी संग रहेगा तो अवश्य दुष्ट हो जायेगा, वो भी पतन पायेगा। इसलिये सत्संगी रहें।

२५ दुर्ज्ञास्ते भगवत्प्रोक्ताः ह्यज्ञास्ताननु ये पुनः।
प्रवाहेऽपि समागत्य पुष्टिस्थास्तैर्न युज्यते॥
सोऽपि तैस्तत्कुले जातः कर्मणा जायते यतः। (अपूर्णम्)

दुर्ज्ञाः	ते	भगवत्	प्रोक्ताः	हि	अज्ञाः	तान्	अनु	ये	पुनः
दुर्ज्ञानी	वे	भगवानने	कहें है	ही	अज्ञानी	उनको	अनुसरे	जो	फिरसे

प्रवाहे	अपि	समागत्य	पुष्टिस्थः	तैः	न	युज्यते
प्रवाहमें	भी	मिल जाय	पुष्टिस्थित	उनमें	नहीं	संमिलित

सः	अपि	तैः	तत्कुले	जातः	कर्मणा	जायते	यतः
वो	भी	उनमें	उस कुलमें	जन्मे	कर्मोंसे	जन्मे है	जिससे

ते दुर्ज्ञाः भगवत् प्रोक्ताः (गीतायाम् षोडशेऽध्याये)। हि ये अज्ञाः पुनः तान् अनु(सरन्ति)। पुष्टिस्थः प्रवाहे अपि समागत्य तैः न युज्यते॥ सः (अज्ञः) अपि कर्मणा जायते, यतः तैः तत्कुले जातः।

वे दुष्टज्ञानीजन (गीताजीके सोलहवें अध्यायमें) भगवानने कहें है। और जो अज्ञानी है, फिर उनको अनुसरते है। पुष्टिस्थित (भक्त) प्राकृतिक लोकमें संमिलित हो तो भी वहाँ उनमें लिप्त नहीं होता.. उनका रंग नहीं लगता। वे (अज्ञानी) भी कर्मसे जन्में है, जिससे उनका कुल पातें है। (यह ग्रंथ अपूर्ण प्राप्त है..)

तात्पर्य : अन्न-जल या मन-बुद्धि दूषित हुए तो साफ करने अतिकठिन है! इसलिये योग्य सुरक्षित स्थानमें रखने चाहिये। अन्न-जल ढँकते है वैसे मन-बुद्धिको सद्विचारोंसे ढँककर रखने चाहिये। समाजमें ऐसे ऐसे विचार घूमतें है कि एकवार यदि दिमागमें बैठ गयें तो मन दूषित हो जाय! फिर बुद्धिको विकृत ही दिखाई देगा! इसलिये यदि ज्ञान न हो तो नित्य निरंतर भगवदीय.. सत्संगीके साथ ही रहेना चाहिये। फिर जैसा संग वैसा रंग! दुर्जनोंके संगसे दुष्कर्म ही होंगे और सज्जनोंके संगसे सत्कर्म ही होंगे। वैसे दूसरा जन्म भी तो कर्म उपर निर्भर है! कर्मो आधारित ही अच्छा या बुरा कुल प्राप्त होगा।

दूध पाणीमें घूल जाय, मख्खन नहीं! पुष्ट जीव मख्खन जैसे है, दुष्टोंकी उन पर कोई असर नहीं होती। इसलिये इसी जन्ममें पुष्ट होनेका प्रयत्न करना चाहिये।

यहाँ तक ही यह ग्रंथ उपलब्ध है। प्रवाहमार्गीके लिये इतना ही प्राप्त है, जब कि मर्यादामार्ग और पुष्टिमार्गके जीवोंका विश्लेषण लुप्त हुआ है। हरिइच्छा!

अनुमानसे आगेका इतना तो समझमें आता है कि, प्रवाहमार्गी दुष्टजीव पतन पातें है; पुनः मनुष्य देह पायेंगे या नहीं, यह प्रश्न है। प्रवाहमार्गी सुजन.. सन्मार्गी, अज्ञानी होंगे तो भी पुनः मनुष्य जन्म पाकर विकास कर सकेंगे, मर्यादामार्गी होंगे। उनके कर्म ही सांस्कृत लोगोंमें जन्म दिलायेगा।

मर्यादामार्गका विश्लेषण आचार्यश्रीने अद्भुत किया ही होगा, फिर भी सोचें तो योगमार्गकी भाँति यम-नियमका पालन करके, मर्यादाओंमें रहकर जीवनबलका आध्यात्मिक मार्गमें उपयोग करना चाहिये। वेद-उपनिषदोंके पूर्णज्ञानसे ही जीवनको मोड मिलेगा। प्रस्थानत्रयीसे जीवनका उत्कर्ष निश्चित है इसमें कोई शंका नहीं है। कोई भी मनुष्य उसे अपना सकता है।

ये वातें मात्र हिंदुपर्यंत सीमित नहीं, मनुष्य मात्रको लागु होती है। यह तो कलियुगकी लीला है कि सनातन संस्कृतिको 'हिन्दु' शब्दसे सीमित कर दी, अन्यथा आर्य संस्कृति वैदिक है.. सनातन है अर्थात् सृष्टिके साथ प्रगटी है और सृष्टिके साथ ही लय पायेगी। उससे विमुख होंगे उनको कलि ही भवोभव घूमायेगा.. प्रलय तक भटकायेगा! हिन्दु होकर भी जो ये न समझे वो महाअभागी है!

आचार्यश्रीने गीताजीके संदर्भोंसे हमको सरलरूपमें समझाया है। अब यदि अज्ञानी है तो सत्संगीओंके संग या भगवदियोंके संग रहकर सन्मार्गे जायें। थोडा बहोत ज्ञान पाया हो तो मर्यादित जीवनसे विकास कर लें। वल्लभाचार्यके अन्य ग्रंथ सहायभूत होंगे, इससे पुष्टि पाकरके भक्तिमार्गमें आगे बढेंगे। गीताजी आत्मसात करेंगे तो सभी आचार्य कहतें है ऐसे भगवानको प्रिय होंगे और पुष्ट रहेंगे। उसके बाद कहीं सरकेंगे नहीं, प्रभु ध्यान रखेंगे!

रात्रीमें ही ब्राह्ममुहूर्त होता है और तभी जगनेका उचित समय कहा है, पश्चात् अरुणोदय होता है और बादमें सूर्योदय होता है। मानवजन्मके भी ये तीन काल है। प्रथम मानवदेह ए ब्राह्ममुहूर्त ही है! प्रवाहमार्गमें जो जग गया वो मानव बन गया। फिर मर्यादामार्गका अरुणोदय निश्चित है! अरुणोदयकी संध्या जिसने पूर्ण की, पुष्टिमार्गका सूर्योदय उसके जीवनमें ज्ञानका प्रकाश भर देगा! पूर्णत्वको पा लेगा! यह 'मानवपथ' है! बहुनां जन्मनामन्ते! तीन जन्म तो निश्चित है! प्रवाहका पथिक, मर्यादाका पथिक, अंतमें पुष्टिका पथिक! हरे कृष्ण!